अर्जुन चौबे

बनाम

भारत संघ और अन्य

(Arjun Chaubey

v.

Union of India and Others)

(23 मार्च, 1984)

(मुख्य न्यायाधिपति वाई० वी चन्द्रचूड़, न्यायाधिपति वी० डी० तुलजापुरकर, आर० एस० पाठक, डी० पी० मदान और एम० पी० ठक्कर)

संविधान, 1950—अनुच्छेद 311(2), परन्तुक(ख), 309 का परन्तुक और 226 (सपठित नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत)—सरकारी सेवक की पदच्युति—स्वयं के साथ अवचार का अभियोग लगाते हुए अधिकारी द्वारा सूचना दी जानी—स्वयं अधिकारी द्वारा अभियोगों का मूल्यांकन किया जाना और उत्तर दिया जाना—जांच के बिना पदच्युत किया जाना—चूंकि अपने ही मुकदमे में कोई स्वयं निर्णायक नहीं हो सकता और कोई भी साक्षी यह प्रमाणित नहीं कर सकता कि उसका अपना परिसाक्ष्य सही है, अतः पदच्युति का आदेश अवैध है और उससे नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन होता है।

अपीलार्थी से ज्येष्ठ वाणिज्य अधिकारी ने एक पत्र द्वारा घोर अनुशासन के आरोपों के बारे में स्पष्टीकरण मांगा। अपीलार्थी ने अपने उत्तर में आरोपों का स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया। अगले ही दिन उप मुख्य वाणिज्य अधीक्षक ने अपीलार्थी पर एक दूसरी सूचना तामील की, जिसमें कहा गया कि स्पष्टीकरण संतोषजनक नहीं है और उसे अपना स्पष्टीकरण देने के लिए एक दूसरा अवसर दिया गया। इस पत्र द्वारा अपीलार्थी से तीन दिन के भीतर अपना स्पष्टीकरण देने के लिए कहा गया और कहा गया कि आपके विरुद्ध प्रतिशोधक अनुशासनिक कार्रवाई क्यों न की जाए। अपीलार्थी ने अपना दूसरा स्पष्टीकरण दिया किन्तु अगले ही दिन उप मुख्य वाणिज्य,

1984(3) eILR(PAT) SC 1

अधीक्षक ने उसे इस आधार पर पदच्युत कर दिया कि वह सेवा में रखने लायक नहीं है।

अपीलार्थी ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय में रिट पिटीशन फाइल किया, जो खारिज कर दिया गया। अपीलार्थी ने विशेष इजाजत लेकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की। अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित—कोई भी व्यक्ति स्वयं अपने मामले में निर्णायक नहीं हो सकता और कोई भी साक्षी यह प्रमाणित नहीं कर सकता कि उसका अपना परिसाक्ष्य सच है। जो व्यक्ति किसी जांच में स्वयं संबद्ध होता है, उसे जांच करने से अपने आपको अलग रखना चाहिए। इस प्रकार अपीलार्थी के विरुद्ध पारित पदच्युति आदेश मात्र इस कारण से दूषित है कि यह प्रश्न कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी 3 के बीच कौन सच बोल रहा है, प्रत्यर्थी 3 द्वारा स्वयं निश्चित किया गया। (पैरा 5)

अवलम्बित निर्णय

		पैरा
[1958]	[1958] एस० सी० आर० 595 : **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मोहम्मद नूह** (The State of Uttar Pradesh *v.* Mohammad Nooh).	6

सिविल अपीली अधिकारिता : 1983 की सिविल अपील सं० 2613.

1982 की सिविल प्रकीर्ण रिट सं० 8287 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के तारीख 19 नवम्बर, 1982 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध सिविल अपील।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री आर० के० गर्ग, एस० एन० सिंह और डी० के० गर्ग

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री पी० आर० मृदुल, कुमारी ए० सुभाषिणी, सर्वश्री आर० एन० पोद्दार, सी० वी० सुब्बाराव और ए० के० गांगुली

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायाधिपति वाई० वी० चंद्रचूड़ ने दिया।

मुख्य न्यायाधिपति चंद्रचूड़—

अपीलार्थी मुख्य वाणिज्य अधीक्षक, उत्तरी रेलवे, वाराणसी के

कार्यालय में ज्येष्ठ लिपिक के पद पर कार्यरत था। 22 मई, 1982 को ज्येष्ठ वाणिज्य अधिकारी ने उसे एक पत्र लिखा, जिसमें घोर अनुशासनहीनता संबंधी 12 आरोपों के बारे में उसका स्पष्टीकरण मांगा। अपीलार्थी ने 9 जून, 1982 को अपने उत्तर द्वारा आरोपों का स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया। अगले ही दिन उप मुख्य वाणिज्य अधीक्षक ने अपीलार्थी पर एक दूसरी सूचना तामील की, जिसमें कहा गया था कि आपने जो स्पष्टीकरण दिया है, वह संतोषजनक नहीं है किन्तु यह कि आपको उन विनिर्दिष्ट आरोपों के बारे में जो 22 मई, 1982 के पत्र द्वारा सूचित किए गए थे, स्पष्टीकरण देने के लिए एक दूसरा अवसर दिया जा रहा है। इस पत्र द्वारा अपीलार्थी से तीन दिन के भीतर अपना स्पष्टीकरण देने के लिए भी कहा गया कि आपके विरुद्ध प्रतिशोधक अनुशासनिक कार्रवाई क्यों न की जाए। अपीलार्थी ने 14 जून, 1982 को अपना दूसरा स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया किन्तु अगले ही दिन उप मुख्य वाणिज्य अधीक्षक ने इस आधार पर उसे पदच्युत कर दिया कि वह सेवा में रखने लायक नहीं है।

2. अपीलार्थी ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय में रिट फाइल करके पदच्युति के आदेश को विभिन्न आधारों पर चुनौती दी। भारत संघ, ज्येष्ठ वाणिज्य अधिकारी तथा उप मुख्य वाणिज्य अधीक्षक को उस पिटीशन में प्रत्यर्थी 1 से 3 के रूप में शामिल किया गया। उच्च न्यायालय ने वह रिट पिटीशन खारिज कर दिया। इसलिए अपीलार्थी ने विशेष इजाजत लेकर यह अपील फाइल की है।

3. अपीलार्थी को सेवा से पदच्युत करने का आदेश प्रत्यर्थी सं० 3 ने रेल सेवक (अनुशासन और अपील) नियम, 1968 के नियम 14 (ii) [सपठित संविधान के अनुच्छेद 311 (2) के परन्तुक (ख)] के अधीन पारित किया। प्रत्यर्थी 3 ने अपने निष्कर्ष के कारण लेखबद्ध किए। उसका निष्कर्ष था कि सुसंगत नियमों में दी गई रीति से अपीलार्थी के आचरण के बारे में जांच करना युक्तियुक्त रूप से साध्य नहीं है और इसके बाद उसने बिना कोई जांच किए पदच्युति का आदेश पारित कर दिया।

4. अनुशासन और अपील नियम, 1968 के वास्तविक अर्थ और आशय के बारे में बहस करने तथा इस बात पर जोर देने में अपीलार्थी के काउन्सेल ने अच्छा-खासा समय लिया कि अपीलार्थी को सुनवाई का अवसर देकर यह पूछा जाना चाहिए था कि क्या उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों के बारे में जांच करना युक्तियुक्त रूप से साध्य नहीं है। विद्वान काउन्सेल

ने इस बात पर भी जोर दिया कि यह तथ्य कि नियमों द्वारा अनुध्यात रूप में पूर्ण जांच करना युक्तियुक्त रूप से साध्य नहीं था, बिलकुल भी जांच न करना न्यायोचित नहीं हो जाता। हम इन दलीलों के गुणागुण के बारे में विचार करना नहीं चाहते क्योंकि अपीलार्थी एक दूसरे आधार पर सफल होने के लिए हकदार हैं।

5. तारीख 22 मई, 1982 का पत्र जिसमें अपीलार्थी के विरुद्ध घोर अवचार के अभियोग लगाए गए हैं, 12 आरोप दिये गये हैं, जिनमें से आरोप सं० 2 से 7 और 11 प्रत्यर्थी सं० 3 के संबंध में अपीलार्थी के अवचार से हैं। उदाहरण के लिए दूसरे आरोपों में अभिकथन किया गया है कि अपीलार्थी प्रत्यर्थी सं० 3 के कार्यालय में घुस गया और उसने उद्दंडी एवं अपमानजनक भाषा में उसे चुनौती दी। आरोप सं० 3 में कहा गया है कि अपीलार्थी छोटी-छोटी शिकायतें लेकर हर रोज 2-3 बार प्रत्यर्थी सं० 3 के पास पहुंचने का आदी था। आरोप सं० 4 में अभिकथन है कि अपीलार्थी प्रत्यर्थी 3 के कार्यालय में जबरदस्ती घुस गया और उसने जोर-जोर से गंदे-गंदे शब्द कहे। आरोप सं० 5, 6 और 7 में भी ऐसे ही कथन किए गए हैं। आरोप सं० 11 में किया गया अभिकथन इस आशय का है कि गुंडों के नेता की भांति व्यवहार करते हुए अपीलार्थी ने अन्य गुंडों की सेवाएं किराए पर लीं और प्रत्यर्थी सं० 3 तथा उसके परिवार के सदस्यों के लिए सुरक्षा की समस्या खड़ी कर दी। प्रकट है कि अपीलार्थी के विरुद्ध लगाए गए आरोपों के बारे में जांच की जाती तो विभाग की ओर से मुख्य साक्षी स्वयं प्रत्यर्थी 3 होता क्योंकि वही मुख्य अभियोक्ता के अपीलार्थी के अवचार का निशाना था। इस संदर्भ में आश्चर्य की बात है कि तारीख 9 जून, 1982 के स्पष्टीकरण पर जो अपीलार्थी ने 22 मई, 1982 के अभियोग-पत्र के उत्तर में दिया था, स्वयं प्रत्यर्थी सं० 3 ने गुणागुण पर विचार किया था। इस प्रकार अभियोक्ता स्वयं न्यायाधीश बन गया। प्रत्यर्थी सं० 3 ने 10 जून, 1982 को अपीलार्थी को जो पत्र लिखा था, उसमें कहा गया था—

> "तारीख 22 मई, 1982 के समसंख्यक इस कार्यालय के पत्र में दिए गए आरोपों से संबंधित आपका 9.6.1982 का प्रतिरक्षा स्पष्टीकरण मैंने ध्यानपूर्वक पढ़ा है, वह बिलकुल भी संतोषजनक नहीं है। डी० एण्ड ए० आर० के अधीन कार्रवाई करने से पूर्व मैं यह चाहूंगा कि इस कार्यालय के पत्र तारीख 22 मई, 1982 के द्वारा सूचित विनिर्दिष्ट आरोपों के बारे में अपना स्पष्टीकरण देने के लिए आपको एक और मौका दिया जाए।

1984(3) eILR(PAT) SC 1

कृपया तीन दिन के भीतर अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत करें कि आपके विरुद्ध निवारक अनुशासनिक कार्रवाई क्यों न की जाए।"

अपीलार्थी ने अपना और भी स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया, उस पर भी स्वयं प्रत्यर्थी 3 ने विचार किया था। 15 जून, 1982 के पदच्युति आदेश में जो प्रत्यर्थी 3 ने जारी किया था, लिखा है कि मेरा पूरी तरह समाधान हो गया है कि नियमों द्वारा किए गए उपबंध के अनुसार अपीलार्थी के आचरण के बारे में जांच करना युक्तियुक्त रूप से संभव नहीं है और मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि अपीलार्थी सेवा में रखने लायक नहीं है. अतः उसे पदच्युत करना होगा। प्रकट है कि प्रत्यर्थी 3 ने अपीलार्थी के विरुद्ध अपने द्वारा लगाए गए अभियोगों का मूल्यांकन स्वयं किया और एक निर्णय पारित किया जो कि बहुत ही आसान काम है, अर्थात् यह कि वह स्वयं एक सच्चा व्यक्ति है और अपीलार्थी झूठा। ऐसा करके प्रत्यर्थी 3 ने नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन किया। अपीलार्थी के विरुद्ध लगाए गए आरोपों में प्रमुख आरोप प्रत्यर्थी 3 के संबंध में उसके आचरण से संबंधित है। अतः प्रत्यर्थी 3 स्वयं अपीलार्थी द्वारा दिये गये स्पष्टीकरण पर निर्णय नहीं दे सकता था और यह कि अपीलार्थी का स्पष्टीकरण असत्य है। कोई भी व्यक्ति स्वयं अपने मामले में निर्णायक नहीं हो सकता और कोई भी साक्षी यह प्रमाणित नहीं कर सकता कि उसका अपना परिसाक्ष्य सच है। जो व्यक्ति किसी जांच में स्वयं संबद्ध होता है, उसे जांच करने से अपने आपको अलग रखना चाहिए। इस प्रकार अपीलार्थी के विरुद्ध पारित पदच्युति आदेश मात्र इस कारण से दूषित है कि यह प्रश्न कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी 3 के बीच कौन सच बोल रहा है, प्रत्यर्थी 3 द्वारा स्वयं तय किया गया।

6. **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मोहम्मद नूह**[1] में मु० न्या० एस० आर० दास ने बहुसंख्यक निर्णय देते हुए कहा कि एक ही व्यक्ति न्यायाधीश और साक्षी की भूमिकाएं नहीं निभा सकता और यह कि उन दोनों भूमिकाओं के संयुक्त होने पर यह प्रत्याशा करना व्यर्थ है कि न्यायाधीश न्याय की तुला का संतुलन कायम रखेगा। मु० न्या० दास के शब्दों में "हम अपने समक्ष वाले मामले के तथ्यों के आधार पर यह निष्कर्ष लेखबद्ध करते हैं कि उन कार्यवाहियों की अवैधता, जिनका अंत में अपीलार्थी की पदच्युति की गई थी" इतना प्रकट और प्रत्यक्ष रूप से दोषपूर्ण है कि इसके द्वारा प्रत्यर्थी 3 के

[1] [1958] एस० सी० आर० 595,609.

विनिश्चय पर अशक्यता की अमिट छाप दिखाई पड़ती है।

7. प्रत्यर्थी की ओर से श्री मृदुल ने दलील दी कि यद्यपि यह सही विधि की स्थिति है, फिर भी अपीलार्थी न्यायालय की सहायता के योग्य नहीं है क्योंकि वह अनुशासन भंग के कार्यों का आभ्यासिक रूप से दोषी था। हम इस तर्क से प्रभावित नहीं हैं, पहले तो अपीलार्थी को अनुशासनहीनता के आभ्यासिक कार्यों का दोषी ठहराना, ऐसा काम करना होगा, जो साबित नहीं हो पाया। दूसरे प्रत्यर्थी 3 द्वारा पारित पदच्युति का आदेश में जो अवैधता है, वह इतनी गंभीर और मूलभूत प्रकृति की है कि अपीलार्थी के अभिकथित आभ्यासिक दुर्व्यवहार का उपचार नहीं हो सकता या उसे माफ नहीं किया जा सकता।

8. परिणामस्वरूप हम अपील मंजूर करते हैं और उच्च न्यायालय का निर्णय अपास्त करते हैं। 15 जून, 1982 का आदेश अपास्त किया जाता है। उस आदेश द्वारा अपीलार्थी को पदच्युत किया गया था। फिर भी पक्षकारों के पारस्परिक अधिकारों और बाध्यताओं की रूपरेखा तैयार करने में अनावश्यक जटिलताओं से बचने की दृष्टि से हम यह निदेश देते हैं कि अपीलार्थी के बारे में जो लगभग 6 मास के अन्दर सेवानिवृत्त होना है, यह समझा जाएगा कि वह 1 अप्रैल, 1984 से सेवानिवृत्त हो गया है। उसे 15 जून, 1982 को उसके द्वारा प्राप्त अन्तिम वेतन के आधार पर 31 मार्च, 1984 तक देय वेतन की बकाया धनराशि संदत्त की जाएगी और उन वेतन वृद्धियों को हिसाब में नहीं लिया जाएगा जो वह उस तारीख के बाद उपार्जित कर सकता था। भविष्य-निधि और उपदान भी अपीलार्थी को नियमानुसार वैसे ही संदत्त किया जाएगा मानो पदच्युति का कोई आदेश उसके विरुद्ध पारित नहीं किया गया था। अपीलार्थी अपना कार्यभार फिर से ग्रहण नहीं कर सकता और न करेगा। उसे इस समय और 31 मार्च, 1984 के बीच छुट्टी पर माना जाएगा।

9. अपीलार्थी को 31 मार्च, 1984 तक के वेतन की बकाया धनराशि उस तारीख को या के पूर्व ऊपर इंगित आधार पर संदत्त की जाएगी और किसी भी दशा में 1 मई 1984 के बाद नहीं। उसे भविष्य-निधि और उपदान का संदाय आज से 2 मास के भीतर किया जाएगा।

10. श्री गर्ग ने अपने मुवक्किल अपीलार्थी की ओर से हमारे समक्ष कहा कि अपीलार्थी के अधिभोग में न तो कोई शासकीय आवास है और न ही उसके पास कोई गेरेज है, जिसका उल्लेख 22 मई, 1982 वाले पत्र में

आरोप सं० 6 में किया गया है।

11. अपील उपरोक्त आदेश के अनुसार निपटाई गई मानी जाएगी। प्रत्यर्थी 1, भारत संघ अपीलार्थी को खर्चे के रूप में एक हजार रुपए की धनराशि देगा।

कृ०

अपील मंजूर की गई।